बृजबाला सिंह

फाँद और उपपत्तिसम के कवि धूमिल

हिन्दी कविता में जिस समय सीमाओं का अतिक्रमण करते हुए नयेपन और क्रान्ति का उत्साह प्रबल हो रहा था, तब ये गीत गुनगुनाते हुए कविता की दुनियाँ में आए। एक ओर अकविता अर्थात् कविता-विरोधी कविता, दूसरी ओर बीट कविता की अन्तर्राष्ट्रीय हलचल थी। बीट कविता के प्रमुख कवि 'जीन्सबर्ग' और 'आर्लास्की' गाँजा, भाँग, एल०एस०डी० संस्कृति के समर्थक के रूप में बनारस में रम रहे थे। दोनों पुरुष थे, लेकिन एक दूसरे को पति-पत्नी कहते हुए आवारगी का विज्ञापन कर रहे थे। भदैनी, अस्सी उनका अड्डा था। इसलिए उनका महत्व स्वीकार करने वालों में बुजुर्ग कवि त्रिलोचन, युवाकवि धूमिल और चंचल साहित्य प्रेमी नागानन्द सम्मिलित थे। ऐसे परिवेश में कविता की भाषा बदली। धूमिल ने अपनी कविता का वितान तानते समय केवल अकविता और बीट कविता जैसे आगन्तुक कारणों को ही प्रेरक नहीं बनाया बल्कि आजादी के बारह वर्षों बाद की उपलब्धि और मोहभंग के प्रति वे चिन्तित थे। इनके अलावा कुछ और भी मजबूत प्रमाण और ठोस कारण थे, जिनसे धूमिल की काव्य धारणा को तल्खी मिली। संभवतः स्वतन्त्रता प्राप्ति बाद के वर्षों के स्वशासन की विफलता ने कवियों को सोचने के लिए लाचार कर दिया था। आदर्श कहे जाने वाले राजनेताओं के दूसरे चरित्र तथा भ्रष्ट शासन प्रणाली ने जन-जीवन को अनेक समस्याओं में डाल दिया था। विकास के लिए नये-नये प्रयोग चालू किए गए। कृषि प्रधान देश में औद्योगिक-क्रान्ति की नींव पड़ती गई, परन्तु उसका लाभ उनको नहीं हुआ, जिनके लिए इन्हें चलाया गया था। 'रघुवीर सहाय' ने 'आत्महत्या के विरुद्ध' नामक कविता में औद्योगिक क्रान्ति की उपलब्धियों पर तीखा प्रहार करते हुए लिखा है कि जनता को टूटी लालटेन, हिलती चौकी और मरे हुए चूल की पेंचे ही मिलीं। एक खास सम्पन्न वर्ग और सम्पन्न होता चला गया।

इतना ही नहीं जनता के विकास को ध्यान में रखकर 'तकनीकी शिक्षा' का प्रारंभ, प्रचार किया गया। तकनीकी में प्रशिक्षित और दक्षता प्राप्त युवक अपने पिछड़े देश की सेवा करने की अपेक्षा विकसित पाश्चात्य देशों के औद्योगिक क्षेत्र के प्रशिक्षित मजदूरों की कमी को पूरा करने के लिए या अपने लिए बेहतर सुख-सुविधा पाकर उधर दौड़ पड़े। देश में एक ओर ऊँची इमारतें और ऊँची होती गईं, विलासिता के साधन जुटते रहे, दूसरी ओर बेघरों की संख्या भी बढ़ती गई और जीने की आवश्यक जरूरतों की भी घटत होती रही। धूमिल ने इन सभी कारणों, समस्याओं को बारीकी से केवल देखा ही नहीं उसे जिया भी। भोगा भी। उनके काव्य को ध्यान से देखने पर दो तरह की समस्याएँ दिखती हैं। एक तो वे समस्याएँ जिनका सम्बन्ध न प्रशासन से है, न जिसका समाधान प्रशासन के हाथ में है लेकिन कुछ ऐसी समस्याएँ थीं जिनका श्रेय और प्रेय दोनों प्रशासन पर जाता है। जिन्हें दूर करने की जिम्मेदारी भी उसी पर है। हमारी सुविधा, उन्नति, विकास का दायित्व सरकार पर है। जनतन्त्र प्रणाली वाले देश में सरकार का दायित्व अधिक होता है, चुने हुए प्रतिनिधियों से बनी संसद का होता है। संभवतः यही कारण है कि धूमिल ने 'संसद से सड़क तक' की यात्रा करके संसद से सीधे ऐसे प्रश्न किया है, जिनका सम्बन्ध साधारण लोगों की समस्याओं से था, न्याय, भाषाभेद तथा तोड़-फोड़वाले हिंसक प्रदर्शनों से जुड़ा था। भूख जीवन की प्राथमिक जरूरत, पहले उसी का समाधान पाना था। धूमिल की सबसे बड़ी चिंता भूख से छुटकारा पाना था। वे स्वयं से अकेले में प्रश्न करते थे तथा संसद के सामने भी प्रश्न खड़ा करते थे। अफसोस तो उन्हें तब होता था, जब समस्याओं का हल भी प्रश्न लिए होता था। कवि लाचारी में चुप लगा लेता है लेकिन 'संसद' की चुप्पी का अर्थ वह नहीं समझ पाता क्योंकि संसद की चुप्पी चीखभरी होती है—

मैं समझता हूँ कि 'इनकार से भरी हुई चीख'
और एक 'समझदार चुप'

Scanned with CamScanner

दोनों का मतलब एक है—
भविष्य गढ़ने में, 'चुप' और 'चीख'
अपनी-अपनी जगह एक ही किस्म से
अपना-अपना फर्ज अदा करते हैं।

कवि ने समूचे काव्य में रोटी की समस्या को अनेक प्रकार से उठाया है। कभी वह 'पटकथा' का निर्देश करता है तो कभी 'रोटी और संसद' जैसी धारदार कविता छपवाता है, जिसमें एक आदमी जीवनभर रोटी बेलता रहता है, श्रमिक है एक दूसरा आदमी रोटी खानेवाला उपभोक्ता वर्ग है। लेकिन एक तीसरा ऐसा आदमी है जो रोटी से, रोजी-रोटी से खेलता है। कवि संसद से इस तीसरे आदमी का नाम पूछता रह जाता है, संसद मौन रह जाती है।

एक बात और ध्यान देने योग्य है। आजादी के बाद देश का विकास अर्थ के आधार पर नहीं हुआ कहना गलत होगा। आर्थिक विकास हुआ परन्तु आम जनता तक इसकी पहुँच नहीं हो सकी। क्या कारण था कि आजादी पाने के इतने लम्बे समय के बाद भी इसी देश में बना महीन कपड़ा, सुख-सुविधा की चीजों से आम आदमी वंचित रह गया। धूमिल ने सुख-सुविधा को नहीं सिर्फ रोटी को पाने का अधिकार माँगा है उसी से भूख मिटाना चाहा है। कीमती वस्त्र और स्वादिष्ट पकवान तो उनके सपने में भी नहीं था। रोटी, कपड़ा, मकान तीन प्राथमिकताओं में, पहली पर वे रुके थे, उलझे थे, टूटे थे, बिखरे थे-

उसके आगे थाली आती है
कुल रोटी तीन। खाने से पहले मुँह दुब्बर
पेटभर। पानी पीता है और लजाता है
कुल रोटी तीन। पहले उसे थाली खाती है
फिर वह रोटी खाता है।

धूमिल की इन पंक्तियों को पढ़ते हुए 'केदारनाथ सिंह' की 'रोटी' भी ताजी हो जाती है। जिसमें उन्होंने रोटी के अभाव में दीवार पर बनने वाली रोटी की आकृति में गन्ध और स्वाद का अनुभव किया है, कराया है। धूमिल की भूखानुभूति केवल बड़ों तक ही नहीं बल्कि बच्चों में भी है। बच्चे जिन्हें समूची रोटी नहीं बल्कि रोटी का टुकड़ा चाहिए, वह भी कठिनाई से माँ जुटा पाती है। माँ का चेहरा पत्थर, पिता काष्ठवत् और समूचा घर अपनी ही आग में जल रहा है। वे यह भी देखते हैं कि इसी समाज में एक निठल्ला नकारा वर्ग भी है। भ्रष्ट एवं रिश्वतखोर है परन्तु उसकी रसोई का चावल बहुत महीन है। कवि कारणों की गहराई में उतरता है। वह सोचता है कि देश में अन्न की, गेहूँ की पैदावार तो दिनों-दिन बढ़ती जा रही है उसके समानान्तर रोटी के अभाव की बढ़ोत्तरी क्यों हो रही है। उसे तरस आता है राजनेताओं के लम्बे बयानों पर, जो जनता की समस्याओं के कारणों को, समाधान को भी उसी पर थोप देते हैं। बड़ी बेहयाई से कहते हैं कि बढ़ती हुई जनसंख्या ने सारी योजनाएँ विफल कर डाली हैं। बेचारी जनता अब किसके सामने मुँह खोले। कवि ने एक जिम्मेदार आदमी के सामने प्रश्न रख दिया, आखिर भूख कौन उपजाता है ? वह 'चालाक आदमी' (कोई राजनेता) इस बात का उत्तर नहीं देता, उत्तर देकर वह फँसना नहीं चाहता, वह बड़ी होशियारी से गलियों की ओर इशारा करता है—

उस चालाक आदमी ने मेरी बात का उत्तर नहीं दिया
उसने गलियों और सड़कों और घरों में
बाढ़ की तरह फैले हुए बच्चों की ओर इशारा किया
और हँसने लगा।

इन पंक्तियों से यह भी साबित हो गया कि उस आदमी के संकेत में मिथ्या अंश नहीं है। उसके पीछे अशिक्षा है, पिछड़ापन तथा जागरूकता का अभाव है। इसे दूर करने के लिए कई योजनाएँ बनीं। कुछ अभियान चले जिनसे समाज का एक खास वर्ग प्रभावित हुआ, सचेत हुआ परन्तु एक बहुत बड़ा वर्ग वैसे ही अनियन्त्रित रह गया और इसी वर्ग ने देश की व्यवस्था को हर तरह से ध्वस्त किया। धूमिल ने भूखेपन और जनसंख्या वृद्धि के कारणों पर, उनके अन्तःसम्बन्ध पर विचार किया था और इस सच को स्वीकार किया था कि भूख से लड़ते आदमी से आबादी बढ़ती है जिनसे लोकतन्त्र की योजनाएँ विफल होती हैं। शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा, कल्याणकारी शिक्षा की अनेक योजनाएँ चलीं परन्तु इनके परिणाम भी बहुत

Scanned with CamScanner

सन्तोषप्रद नहीं रहे। भूख अपनी जगह बनी रही सम्भवत: इसे बनाए रखने में भी एक सुनियोजित चाल हो। यदि सबका पेट भर जायेगा तो किस भूखे के नाम पर वोट माँगे जायेंगे? किस जरूरी समस्या को उछाल उछालकर भाषण दिये जायेंगे, वोट बटोरे जायेंगे। कवि 'सर्वेश्वर, का यह कहना कि जब भी कोई भूख से लड़ने खड़ा होता है। सुन्दर दीखने लगता है। यह 'सुन्दर' धूमिल को भी प्रिय था, ग्राह्य था जिसकी चर्चा उन्होंने अपने साहित्य में कियी है।

धूमिल का पूरा परिवेश देहाती था, परन्तु उनका दिमाग बहुत तेज था। वे रह-रहकर चमत्कारी उक्तियाँ बोलते थे। जवानी में ही 'घाघ' और 'भतृहरि' की भाँति अपनी उक्तियों के लिए चर्चित हो गए थे। उनके पूरे व्यक्तित्व में उनके गाँव 'खेवली' की मिट्टी की गन्ध और करुणा सनी हुई थी, जो आगे चलकर समूचे देश की मिट्टी से जुड़ती है। कवि ने 'खेवली' की दयनीय, त्रासेद एवं भयावह स्थिति का चित्रण करके सारे भारतीय गाँवों की पोल खोला है—

वहाँ न जंगल है न जनतन्त्र
भाषा और गूँगेपन के बीच कोई
दूरी नहीं है।
एक ठंडी और गाँठदार अँगुली माथा टटोलती है।
सोच में डूबे हुए चेहरों और
वहाँ दरकी हुई जमीन में
कोई फर्क नहीं है।

× × × ×

वहाँ सब कुछ सदाचार की तरह सपाट
और ईमानदारी की तरह असफल है।

× × × ×

और अब ऐसा वक्त आ गया है कि सच को भी सबूत के बिना
बचा पाना मुश्किल है।

ये समस्त पंक्तियाँ मात्र 'खेवली' के दर्द को नहीं समूचे देश के सत्य को व्यक्त करती हैं। धूमिल को पढ़ते समय यह प्रश्न बार-बार झकझोरता है कि आखिर इतना दर्द, इतनी बेबसी, इतनी लाचारी, इतनी करुणा उन्हें कैसे घेर चुकी थी। सामाजिक जीवन तो था ही, व्यक्तिगत जीवन भी कम नहीं था। अल्पायु में पिता की मृत्यु, परिवार का आर्थिक तंगी से गुजरना, अर्थाभाव में शिक्षा का क्रम टूटना अनेक कारण थे जिसमें तपकर, गलकर धूमिल का काव्य संसार बना था। उनके पुत्र रत्न शंकर का कहना है, ''इस आर्थिक विपन्नता के पीछे एक बहुत बड़ी विडम्बना यह रही है कि मेरे परिवार में पहले वही सदस्य काल कवलित होता रहा है, जो परिवार की आर्थिक धुरी होता था। जब-जब परिवार की आर्थिक स्थिति थोड़ी सन्तोषजनक हुई, तब-तब मेरे परिवार में ऐसा ही हुआ। मेरे पितामह तथा उनके पाँच भाइयों की मृत्यु तथा इस पीढ़ी में पिताजी की मृत्यु इस बात का प्रमाण है। धन-जन से सम्पन्न मेरा परिवार ऐसे ही समय पर विधि विडम्बना के कारण विपन्न होता रहा है।'' आर्थिक तंगी से छुटकारा पाने के लिए धूमिल ने वह सब कुछ किया, जिस पर आगे चलकर जीवन के प्रकारान्तर कविता की दीवार भी मजबूत बनी। वे कलकत्ता गए और कोई ढंग का काम न मिलने पर लोहा ढोने वाले मजदूरों के साथ लोहा ढोने लगे। लकड़ी की एक मिल में पासिंग ऑफिसर का काम किया। इस पद पर कार्य करते हुए वे भारत के विभिन्न जंगली, पहाड़ी इलाकों में घूमते रहे और उन्होंने अपनी खुली आँखों से देखा कि मेहनतकश मजदूरों, जनता और पूँजीपतियों के बीच कितनी दूरी है। मजदूरों के साथ धन-पशुओं के घिनौने व्यवहार को देखकर उन्होंने महसूस किया कि वैभव एवं विलासिता की कहानी मेहनतकश मजदूरों के आँसुओं से लिखी गयी है। यहीं से उनमें जनवादी संघर्ष की पहचान शुरू हो जाती है और यहीं से उनका विद्रोह नयी आँच में ढलकर, कविता की शक्ल में सामने आता है। 'पटकथा' में उन्होंने लिखा भी है—

यद्यपि यह सही है मैं
कोई ठंढा आदमी नहीं हूँ

Scanned with CamScanner

मुझमें भी आग है
मगर वह
भभककर बाहर नहीं आती
क्योंकि उसके चारों तरफ चक्कर करता हुआ
एक पूँजीपति दिमाग है।

पूँजीवादी किले में कैद होना लाचारी है, ऐसा भी उन्होंने अनुभव किया है। जिंदा रहने के लिए कुछ तो चाहिए। यह सच भी उनके सामने था, फिर भी पूर्णतः अपने भीतर छिपी हुई आग को पूँजीवादी दिमाग के हवाले नहीं कर सके। दो-तीन वर्षों तक इधर-उधर भटकने के बाद वे बनारस वापस चले आए। आर्थिक तंगी समानान्तर चल रही थी, जिसे उन्होंने कविताओं में अनेकशः बिम्बों में उतारा है। सन् 58 में 'औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान' वाराणसी से उन्होंने प्रथम श्रेणी में डिप्लोमा किया और विद्युत अनुदेशक के पद पर नियुक्त हुए। इसी संस्था से जीवनभर जुड़े रहकर बलिया, सहारनपुर, सीतापुर आदि स्थानों पर आते-जाते रहे। परन्तु बनारस प्रवास उन्हें श्रेयस्कर था। परिवार की देखरेख पट्टीदारों के मुकदमे, खेतीबारी, अस्सी, भदैनी सब बनारस में ही थे। परन्तु अधिकारियों का पेट न भर पाने धूमिल जीवन में कई बार स्थानान्तरित होकर आहत होते रहे। उनकी नोंक-झोंक व तीखी बहसें भी होती रहीं और 'सापेक्ष्य संवेदन' होता रहा—

दुःख होता है अगर किसी की
मिली नौकरी छूट गयी हो
लेकिन इतना नहीं
कि जितना
बार-बार सुनने पर भी फटकार
आदमी लौट काम पर फिर
आया हो—
कालर फटी कमीज पहनकर।

धूमिल के अन्तिम दिन कष्ट में बीते। अधिकारियों से अनबन होने के कारण उन्होंने नौकरी से त्याग-पत्र दे दिया और स्वतन्त्र साहित्य सेवा प्रारम्भ कर दिया। जीवन भर तनाव झेलने वाले मस्तिष्क ने ही उनका साथ छोड़ दिया। भयंकर सिरदर्द तथा एक्स-रे में ब्रेन ट्यूमर होने के साथ भी वे कविता लिखते रहे। मात्र 39 वर्ष की अल्पायु में धूमिल ने जीवन यात्रा, कविता-यात्रा साथ-साथ सम्पन्न किया। 'लोहे का स्वाद' उनकी अन्तिम कविता है—

लोहे का स्वाद
लोहार से मत पूछो
उस घोड़े से पूछो
जिसके मुँह में लगाम है।

हिन्दी साहित्य में 'मुक्तिबोध' को 'अंधेरे' का कवि कहा जाता है। परन्तु मुक्तिबोध ही नहीं वे सभी कवि जो अंधेरे से उजाले की ओर बढ़ने का दावा करते, कराते हैं, 'अंधेरे' के हैं। धूमिल भी ऐसे ही कवि हैं। असीम साहस अद्भुत धैर्य तथा अनन्त संभावनाओं के बावजूद व्यक्तिगत जीवन में रिक्तता थी, अन्धकार था, जिससे छुटकारा पाने में उन्होंने सारा जीवन लगा दिया। 'उसके बारे में' कविता में उन्होंने यह स्वीकार किया है कि मेरे भीतर पता नहीं कितना अंधकार था, सारी उम्र चमकने की कोशिश करता रहा, जीवन बीत गया। गाँव वालों की निगाह में धूमिल जिद्दी, बेजगह मारपीट करने वाले और शक्ति प्रदर्शन करने वाले थे। उनकी अक्खड़ता उनकी भाषा में झलकती है। धूमिल ने पंडित 'जवाहर लाल नेहरू' पर तथा 'राजकमल चौधरी' पर जो कवितायें लिखी हैं वे धूमिल के लिए भी सटीक है—

वह एक की निगाह मे हीरा आदमी था
वो दूसरे की निगाह में
कमीना था।

Scanned with CamScanner

उसकी हर आदत
दुनियाँ के व्याकरण के खिलाफ थी।
उसके लिए हम इत्मीनान से कह सकते हैं कि वह
एक ऐसा आदमी था जिसका मरना
कविता से बाहर नहीं है।

धूमिल की मृत्यु के बाद उनकी जो पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध हुई हैं, उनमें गीत, बिरहा, दोहा, शेर एवं कहानियाँ हैं। वे 57-58 की हैं अर्थात् तभी उनके लेखन का आरंभ मानना चाहिए। सबसे पहले उनकी एक कहानी 'फिर भी जिन्दा है', 'साकी' में 1960 में प्रकाशित हुई थी इसके बाद सन् 62 के दौर में उन्होंने बहुत सी गीत रचनाएँ लिखीं। सार्थक कविता की ओर उनका झुकाव 1963 के आसपास हुआ। उनकी प्रथम काव्यकृति 'संसद से सड़क तक' पच्चीस कविताओं की भूमिका साहित्य में प्रतिष्ठित हुई। समकालीन बोध तथा सामाजिक चेतना का विवेचन इन कविताओं में पाया जाता है। 'अकालदर्शन' में धूमिल का प्रश्न भूख कौन उपजाता है ? की चर्चा ऊपर हो चुकी है। राजकमल चौधरी के लिए एक ऐसी कविता है जिसमें कवि एक ओर समूचे देश की दुर्दशा पर प्रतिक्रियाएँ व्यक्त करता है, तो दूसरी तरफ राजकमल के लहू उगलते शब्दों की चर्चा करता है, जो चुनौतियों का सामना करने की हिम्मत देता है। कवि ने आजादी को दरिद्र परिवार की बीस साली बिटिया कहा है। वासनाओं में खोए हुए देश को अनावृत्त किया है। सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपलब्धि के रूप में 'मोचीराम' को लिया जा सकता है। इस कविता का कथ्य उनकी अन्य कविताओं से पृथक है। इस कविता में ठोस मानवीय आधार है। वह कहता है— ''मुझे हर वक्त यह ख्याल रहता है कि जूते और पेशे के बीच कहीं न कहीं एक अदद आदमी है'' कविता में वर्ग चरित्र को बखूबी उभारा गया है। मोचीराम के लिए 'हर आदमी एक जोड़ी जूता होते हुए भी' आदमियत बहुत बड़ी चीज है। वह जानता है कि कोई भी आदमी जूते के नाप के बाहर नहीं है, यानि उसके यहाँ जितने भी जूते आते हैं, वे आदमी की अलग-अलग औकात बताते हैं। बातें करते-करते मोचीराम दो प्रकार के जूते को प्रकारान्तर से सामने लाता है। एक जूता तो वह है, जो जूता कम, चकत्तियों की थैली अधिक है। उसे पहनने वाले व्यक्ति और उस जूते में बड़ा साम्य है। जैसे जूते को चकत्तियों ने चुग लिया है वैसे ही व्यक्ति को भी चेचक ने चुग लिया है। उस पर गरीबी की मार है। वह कहता है, 'बाबूजी इस पर पैसा क्यों फूँकते हो ?' लेकिन वह कह नहीं पाता, क्योंकि आये दिन वह भी गरीबी की मार सहता है और ऐसा कहना तो अपने ही पेशे पर, अपने ही बन्धु पर थूकना है—

बाबूजी। इस पर पैसा
क्यों फूँकते हो ?
मैं कहना चाहता हूँ
मगर मेरी आवाज लड़खड़ा रही है
मैं महसूस करता हूँ—भीतर से
एक आवाज आती है—'कैसे आदमी हो'
अपनी जाति पर थूकते हो'।
आप यकीन करें, उस समय
मैं चकत्तियों की जगह आँखें टाँकता हूँ
और पेशे में पड़े हुए आदमी को
बड़ी मुश्किल से निबाहता हूँ।'

एक जूता वह है जिसे पहननेवाला, पैसे वाला कोई बनिया या बिसाती है, मगर रौब से ऐसा लगता है जैसे 'हिटलर का नाती है'। वह मोचीराम को घण्टेभर खटवाता है लेकिन वाजिब मजदूरी देते समय 'उसकी नानी मरती हैं' और शरीफों को लूटते हो कहकर गुर्राता है तथा कुछ सिक्के आगे फेंककर राह पकड़ लेता है। इस जूते और इसे पहनने वाले इस व्यक्ति से 'मोचीराम' को कोई संवेदनात्मक लगाव नहीं हो पाता। इसलिए सारी मेहनत और ईमानदारी के बीच एक चोर कील दबी रह जाती है, जो मौके-कुमौके अँगुली में गड़ती रहती है। कवि के शब्दों में—

एक जूता और है जिसमें पैर को

Scanned with CamScanner

'नाघकर' एक आदमी निकलता है
वह कोई बनिया है
या बिसाती है
मगर रोब ऐसा कि हिटलर का नाती है
'इशे बाँधो, उशे काटो, हियाँ ठठोक्को, वहाँ पीट्टो
घिश्शा दो, अइशा चमकाओ, जुत्ते को ऐसा बऩाओ'
ओफ्फ! बड़ी गर्मी है, रुमाल से हवा
करता है, मौसम के नाम पर बिसूरता है।

जूते को सिलते हुए 'एक चोर कील उभर आए' मोचीराम जान-बूझकर नहीं चाहता। वह हर वक्त अपने पेशे के प्रति ईमानदार रहना चाहता है। इस कविता में कवि ने बेइमानों, घूसखोरों, अनैतिकतावादियों पर बड़ा गहरा व्यंग्य किया है। मोचीराम पर तीनों मौसम और भाषा के तिरस्कार दोनों की मार पड़ती है, जिसे वह बड़ी पीड़ा के साथ सहता है। कई बार उसका मन झुँझलाए हुए बच्चे के समान काम पर जाने से उसे रोकता है, विद्रोह करता है परन्तु लाचारी उससे सब सहन करवाती है। इस कविता को पढ़ते समय निराला की 'तोड़ती पत्थर' याद आती है।

'मकान' कविता अपने व्यंग्यार्थ में वैवाहिक जीवन की साजिश और बन्धनों के बोझ से पालतू बन जाने की दुरावस्था का भंडाफोड़ करती है। जहाँ रात रिश्तों की आड़ में, पशुओं को पालतू बताती है। इसीलिए कवि मकानों को चरागाह की तरह इस्तेमाल करता हुआ बद्दू जीवन व्यतीत करता है तथा तमाम स्थानों पर घूमते हुए, अनुभव करता है कि सब कहीं दरिद्रता, गन्दगी और बीमारियाँ हैं। 'भाषा की रात' इस संकलन की महत्वपूर्ण और सशक्त रचना है, जिसमें कवि सबसे पहले युग सत्य के बारे में दोटूक बातें कहता है— झूठ है/आदमी/देश आजादी/और प्यार/सिर्फ,नफरत सही है। धूमिल उन चन्द चालाक लोगों की बात करते हैं 'जिनकी नरभक्षी जीभ ने पसीने का स्वाद चख लिया है।' ये भाषा के सहारे भूखों को सहलाते हैं ताकि गुस्से में आदमी खुद अपनी अंगुलियाँ चबाने लगे। उन पर आँच न आए।

संकलन की अन्तिम किंतु सबसे लम्बी कविता (पैंतीस पृष्ठीय रचना) 'पटकथा' है, जो विराट फलक पर भारत की व्यथा-कथा ज्वलन्त बिम्बों में पेश करती है। इस रचना में आजादी के बाद का समूचा भारत बोल उठा है। इसमें हिन्दुस्तान को एक चरित्र के रूप में अंकित किया गया है। आजादी, वऩ महोत्सव, शांति, जनतन्त्र, मनुष्यता आदि शब्दों से प्रसन्न होते हुए काव्य-नायक इस बात की प्रतीक्षा करता है—

अब कोई बच्चा
भूखा रहकर स्कूल नहीं जाएगा।
अब कोई छत बारिश में
नहीं टपकेगी।
अब कोई आदमी कपड़ों की लाचारी में
अपना नंगा चेहरा नहीं पहनेगा
अब कोई दवा के अभाव में
घुट-घुट कर नहीं मरेगा
अब कोई किसी की रोटी नहीं छीनेगा
कोई किसी को नंगा नहीं करेगा
अब यह जमीन अपनी है
आसमान अपना है
जैसा पहले हुआ करता था
सूर्य, हमारा सपना है।

परन्तु कवि इन्तजार करता रहा, करता रह गया। सपना साकार नहीं हुआ। शायद सपने साकार होते भी नहीं। वह बार-बार 'लोकनायक नेहरू' को चुनता रहा, लेकिन समस्याओं के हल 'कोट के बटनहोल में महकते गुलाब' से संभव

Scanned with CamScanner

नहीं हो सके। कवि की व्यंग्य योजनाएँ चलती रहीं, बन्दूकों के कारखानों में जूते बनते रहे। जनतन्त्र को वह 'मदारी की भाषा' वाला तमाशा महसूस करता रहा है। धुँआ, कुहासा, तटस्थता, दरिद्रता और कायरता के बीच काव्यनायक 'खोई हुई आजादी के अर्थ ढूँढता रहा। वह गाँव, पर्वत, जंगल, बाजार जाकर लोकचेतना को टटोलने की कोशिश करता है। सन् पैसठ में पश्चिमी सीमान्त में व्याप्त सीमा युद्ध उसे चौंकाता है, जिसका अन्त 'ताशकन्द के समझौते' की सफेद चादर के नीचे 'एक शान्ति यात्री की लाश के रूप में दिखलाई देता है। काव्यनायक का साक्षात्कार ऐसी स्थिति में जब हिंसा, छलावा, हत्याएँ, संशय, ऊब, नफ़रत, आक्रोश के रूप में सारा भारत धुंधुआता दिखने लगता है 'उलअनों के अंधेरे में' हमशक्ल से होती है, जो हिन्दुस्तान के जागरण का सन्देश देता है। वह काव्यनायक से कहता है कि लाखों तुम्हारे इन्तजार में खड़े हैं, काव्यनायक उसकी बात सुनता है परन्तु अपने ऊपर आँच नहीं आने देता। काव्यनायक के स्वर में निराशा है परन्तु 'हमशक्ल हिन्दुस्तान' में आशावादी स्वर है। वह लोगों को उजाले से जोड़ने में लगा है। कुछ समीक्षकों ने मुक्तिबोध की 'अंधेरे में' और 'पटकथा' को एक सा माना है परन्तु यह स्पष्ट है कि मुक्तिबोध जैसी व्यापकता, सघनता गहराई और फैंटेसी के विविध रूप 'पटकथा' में नहीं हैं।

धूमिल के मरणोपरान्त सन् 1977 में सैंतीस कविताओं का संग्रह 'कल सुनना मुझे' प्रकाशित हुआ। इस संग्रह में युवा लेखन की आक्रामकता है, राजनीतिक समझदारी है और हर मानव, मुक्ति की लड़ाई में संलग्न है। उसमें व्यवस्था के प्रति आक्रोश बार-बार पनपता है। उन्होंने व्यवस्था के नंगेपन के साथ देशप्रेम को सुरक्षा का सर्वोत्तम साधन होते देखा है, घावों की खामोशी देखी है और समाज की विसंगति पूर्ण, पाखंडपूर्ण प्रवृत्तियों का खुला साक्षात्कार किया है—

सबसे अधिक हत्याएँ
समन्वयवादियों ने की।
दार्शनिकों ने
सबसे अधिक जेवर खरीदा।
भीड़ ने कल बहुत पीटा—
उस आदमी को
जिसका मुख-ईसा से मिलता था।

इस संग्रह की कविताएँ युवा आक्रोश को जगाने में समर्थ हैं ताकि यह आग (आक्रोश की) सैकड़ी जिंदा विचारों को सही रूप, असली रूप दे सके। इस संग्रह की कविताओं में 'मिट्टी की करुणा का छन्द है। किसान कवि धूमिल ने गाँव की मौजूदा हालत को भूख उत्पीड़न, दैन्य की तसवीर को सही मायने में खींचा है। उन्होंने प्रजातन्त्र के विरुद्ध खुदकुशी की लटकती रस्सी को देखा है। 'रोटी से खेलते हुए तीसरे आदमी, को ताड़ा है। इन्सानी भूमिका पर 'भाषा और गूँगेपन' के बीच की दूरी को समझने की चेष्टा किया है। 'कल सुनना मुझे' संग्रह का एक और पहलू है, जहाँ कवि भयावह संक्रामकता और घुटन भरे वातावरण में भी अनास्था को कविता का मूलस्वर नहीं मानता। आगत के लिए जीना चाहता है और प्रस्तुत को ढोना चाहता है। कवि ने अंधेरे की मुँडेर पर लटकती अमरबेलि को देखा है, साथ ही प्रकाश की लचीली बाँह को भी। वह सुनहले भविष्य की प्रतीक्षा में है, क्योंकि शब्दों की सक्रियता और छापामार सीटियाँ इस बात का एहसास दिलाती हैं कि दलित वर्ग की शक्ति का तेजी से फैलाव होगा। उसे सुखद भविष्य की प्रतीति है—

धरती पर, एक हरी पत्ती
ओस-कणों के लिए
अब भी रात बीतने का इन्तजार
कर रही है।

सन् 1984 में 'सुदामा पांडे का प्रजातन्त्र' रचना जनपदीय नजरिया और किसानीपन के लिए चर्चित, प्रकाशित हुई। पिछले संग्रहों से एक-दो कदम आगे बढ़कर कवि ने आदमी की आदमी के खिलाफ खुलासा षड्यन्त्र की खरी पहचान और रिश्तों के विघटन की कहानी को दुहराया। उन्होंने सहनशीलता को साहस का पर्याय नहीं माना। उनकी कविता जन-जीवन की चीख-पीड़ा से जन्म लेती है, इसलिए वे जोखम उठाकर सपनों का वयस्क लोकतन्त्र खड़ा करना चाहते थे। धूमिल ने आदमी की उस दिखाऊ प्रवृत्ति को बेनकाब किया है, जहाँ 'कंकालों की अभिशप्त हथेलियों पर गिरते

Scanned with CamScanner

हरों का शोर है।' उन्होंने इस बात पर हमेशा जोर दिया कि आम को आम और चाकू को चाकू कहने का साहस पास होना चाहिए। केवल आँसू बहाकर सब कुछ सह लेने का मतलब क्या होता है? मत भूलों कि तुम्हारा हर अपराधियों के लिए चोट का/दूसरा दरवाजा खोलता है।

इस संग्रह की दो कविताएँ बेजोड़ हैं—'घर में वापसी' और 'हरितक्रान्ति'। पहली रचना इंसानी सरोकार को कता से उकेरने वाली विघटित पारिवारिक रिश्तों को बखूबी उभारती है—

मेरे घर में पाँच जोड़ी आँखें हैं
माँ की आँखें पड़ाव के पहले ही
तीर्थयात्रा की बस के
दो पंचर पहिए हैं .....
रिश्तों को सोचते हुए
आपस में प्यार से बोलते
कहते कि ये पिता हैं
यह प्यारी माँ है
यह मेरी बेटी है
पत्नी को थोड़ा अलग करते
तू मेरी/हम बिस्तर नहीं
मेरी हमसफ़र है।

'हरितक्रान्ति' में भारतीय किसान और व्यवसायी के बीच उभरते वर्ग वैषम्य का चित्रण है। इनका यह काव्य-संग्रह इन्हें मुक्तिबोध के काव्य के निकट खड़ा करता है। धूमिल हिन्दी के अकेले कवि, साहित्यकार हैं, जिन्हें पुरस्कार के बाद भी पढ़ा गया अन्यथा पुरस्कार के कारण पुरस्कृत साहित्य ही नहीं पुरस्कृत साहित्यकार का पूरा साहित्य ही तिरस्कृत हो गया। 'दिनकर' से लेकर 'शिवप्रसाद सिंह' तक सारे नामी-बेनामी के संसार में गुम हो गए। धूमिल इसलिए मशहूर हैं कि पुरस्कारों ने उनके पाठकों को शंका से पीड़ित नहीं किया। सन् 60 से लेकर 2000 तक की कुछ कविताओं में धूमिल की कविताएँ जरूर होंगी। सारे इनामी कवि खारिज होंगे, बचेंगे केवल धूमिल।

●

Scanned with CamScanner